मानसून

यशवंत पंवार[1]

उषा की आभा, कुछ ऐसी, प्रकट हो रही है,
न शीतलता, न अपना आवरण, दिखा पा रही है।
उदयाचल भी शिथिल छटा में, गुम दिख रहा है,
दिन बढ़ता भी मानसून को, आज अखर रहा है।

विहार कर रहे, अवनि के, जीवन्त कुछ ऐसे,
ज्यूं अपने सदन में, उन्हें, कोई बहुत सता रहा है।
घर से बाहर निकलने को हैं लोग आतुर बहुत,
अबका मानसून सबको, ऐसा सता रहा है ।

गाड़ गढ़ने ऊफान पर, बोल रहे कुछ ऐसे,
ज्यूं झूण्ड से बिछड़ा नाग चिंगाड़ रहा हो ।
पास ही सड़कें धरती के उदर में समा गई हैं,
वर्षा मानसून की, कहर, कुछ ऐसा ढा रही है।

सिलसिला है, बादल फटने का इसकदर जारी
उत्तर कभी,कभी दखिन से, सूचना रोज आ रही।
धार बारिश की, दिनोंदिन न रुका रही है।
अबके मानसून में, हृदय कालि सुख रही है।

निशा ने ओढ़ी श्यामल ओढ़नी को
कड़कती बिजली हिला रही है।
गगन के सितोर यूं सिमटे रह गये हो,
ज्यूं मानसूनी की वर्षा से घर उनके ढह गये हों।

*****

[1] सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, चिन्यालीसौड़, उत्तरकाशी, उत्तराखंड, (भारत)